

पश्चिमी गढ़वाल की स्थापत्य कला

सारांश

कला किसी भी कार्य को बेहतर ढंग से करने के प्रक्रिया को कहते हैं। यह वास्तुकला, चित्रकला, मूर्ति, संगीत, नृत्य और नाटकों में देखने को मिलती है। जहाँ ये कलायें विकसित होगी वहाँ मानव उतना ही सुसंस्कृत एवं सभ्य होगा। यह एक परम्परागत धरोहर है, जिसका अस्तित्व लम्बे समय तक रहता है। उत्तराखण्ड के पश्चिमी गढ़वाल के यमुना टोंस— उत्पत्यका की स्थापत्य कला में इसका विशिष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ की कला कृतियों पर गढ़वाल की अपेक्षा हिमाचली प्रभाव है। इतिहास एवं पुरातत्व की दृष्टि से ये कलाकृतियाँ उत्तर गुप्त अथवा राजपूत काल की हैं। साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस क्षेत्र में महाभारत युगीन सभ्यता के अस्तित्व में होने के प्रमाण मिले हैं। प्रो०के०पी० नौटियाल के निर्देशन में हुए थापली (श्रीनगर के निकट) तथा जनपद उत्तरकाशी में पुरोला के निकट छिबाला गाँव के उत्खननों से देश के अन्य स्थलों, हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, श्रावस्ती, कौशाम्बी, अतिरंजीखेड़ा, भगवानपुर आदि से महाभारतयुगीन दधेरी के समान अवशेष प्राप्त हुए हैं। अतः पश्चिमी गढ़वाल की कला एवं स्थापत्य अपने आप में विशिष्ट हैं जो पूर्णतया यहाँ के लोगों के परिस्थितिकी के आधार पर विकसित हुई है। इस शोध के अध्ययन मूल उद्देश्य भी इस कला के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन रहेगा।

मुख्य शब्द : कला, गढ़वाल, उत्तराखण्ड, स्थापत्य, सभ्यता।

प्रस्तावना

कला के विविध रूप संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। जीवन का सुसंस्कृत बनाने वाले साधन तथा उच्च विचार की कुशल अभिव्यक्ति कला है। जिसे मानव के मस्तिष्क की देन माना जाता है। वास्तुकला, चित्रकला, मूर्ति, संगीत, नृत्य और नाटकों में यह कुशलता देखने को मिलती है। जहाँ ये कलायें जितनी विकसित होगी वहाँ मानव उतना ही सुसंस्कृत एवं सभ्य होगा। भले ही उस पर आधुनिकता का प्रभाव हो। किन्तु वह एक परम्परागत धरोहर है, जिसका अस्तित्व लम्बे समय तक रहता है। पश्चिमी गढ़वाल के यमुना टोंस— उत्पत्यका में इसका विशिष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ की कला कृतियों पर पूर्वी गढ़वाल की अपेक्षा हिमाचली प्रभाव है। टोंस उत्पत्य का स्रोत का भू-भाग जो 'पर्वत' के नाम से विख्यात है। जहाँ आज भी महाभारत युगीन कौरव पक्ष के नायकों कर्ण, दुर्योधन, शल्य तथा विशासन की पूजा होती है।² हरकी दून के उत्तर स्थित स्वर्गारोहिणी पर्वत चोटी पाण्डवों के स्वर्गारोहण तथा गडूगाड़ पट्टी के शीर्ष पर स्थित केदारकाण्ठा पहाड़ केदारनाथ तीर्थ के स्थापना की जनश्रुति से सम्बन्ध रखते हैं। पट्टी फते पर्वत के उत्तर में स्थित डोडरा कवार क्षेत्र (जनपद शिमला, हि०प्र०) में अर्जुन जाख तथा भीम की पूजा होती है³ और प्राचीन देव मंदिरों तथा कलाकृतियों के बारे में जनश्रुतियाँ हैं कि इनका निर्माण देव शिल्पी विश्वकर्मा ने कराया था। जबकि इतिहास एवं पुरातत्व की दृष्टि से ये कलाकृतियाँ उत्तर गुप्त अथवा राजपूत काल की हैं।

हिमाचल प्रदेश के किन्नौर तथा अन्य क्षेत्रों के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के स्थलों के बारे में भी इस प्रकार की जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। जिन्हें महाभारत के सन्दर्भों से जोड़ा जाता है। किन्तु जनश्रुतियों के साथ—² ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस क्षेत्र में महाभारत युगीन सभ्यता के अस्तित्व की पुष्टि होती है। जो सुदुरवर्ती क्षेत्रों तक अस्तित्व में थी। वर्तमान गढ़वाल (गंगा—यमुना स्रोत प्रदेश) जिसका तत्कालीन नाम कुलिन्द देश था तथा यहाँ की अनेक जातियों एकासन, खस, पारद, पशुप, कुलिन्द, तंगण और परतंगण आदि युद्धिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अनेक प्रकार के बहुमूल्य उपहार लेकर पहुँचते थे और वनवास के समय पाण्डव कुलिन्दराज, सुबाहु की राजधानी श्रीपुर (वर्तमान श्रीनगर) में पहुँचे थे तथा उनके द्वारा कुलिन्द देश के विभिन्न तीर्थों के भ्रमण का उल्लेख मिलता है (वनपर्व 140/24)।

चन्द्रमोहन रावत

प्रवक्ता,

रा०इ०का०

मालसी, उत्तराखण्ड

अनुश्रुतियों और साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस क्षेत्र में महाभारत युगीन सभ्यता के अस्तित्व में होने के प्रमाण मिले हैं। प्रो० के०पी० नौटियाल के निर्देशन में हुए थापली (श्रीनगर के निकट) तथा जनपद उत्तरकाशी में पुरोला के निकट छिबाला गाँव के उत्खननों से देश के अन्य स्थलों, हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, मथुरा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, अतिरिजी खेड़ा, भगवानपुर, अलापुर, रोपड़ नागर, कठपालन, दधेरी आदि के समान महाभारत युगीन दधेरी आदि के समान महाभारत युगीन सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं⁶ और यहाँ तक 'कुरु' संस्कृति का विस्तार था और यहाँ के लोग आज भी कौरव-पाण्डवों की ईष्ट तथा पितृ देवताओं के रूप में पूजा करते हैं। उपरोक्त के सम्बन्ध में प्रो० एम०पी० जोशी का यह कथन सत्य है कि सुदूर अतीत में आर्यों की पूर्व शाखा ने बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों के खोज में (विशेषकर धातु एवं पर्वतीय उत्पादन जिनका हड़प्पा काल से ही व्यापार होता था) हिमालय की ओर प्रस्थान किया और यहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य व जलवायु के वशीभूत होकर यहाँ अपना स्थायी निवास बना लिया। यहाँ की कला एवं स्थापत्य सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जिस पर पारिस्थितिक प्रभाव स्पष्ट है और विशिष्ट भी है।

अध्ययन का उद्देश्य

उत्तराखण्ड में यमुना टोंस उत्पत्यका के अतिरिक्त इस शैली के मंदिर उपलब्ध नहीं है। हिमाचल प्रदेश के पूर्वी सीमा पर स्थित होने के कारण ही इस क्षेत्र में छत्रशैली के मन्दिरों का निर्माण स्वभाविक रूप से हुआ। देव मन्दिरों के समान यहाँ के आवासीय मकान की काष्ठ काल का अनूठा दर्शन कराते हैं। सामान्यतया मंजिल अथवा किलेनुमा आकार के मन्दिरों तथा बहु मंजिले मकानों को देखने में कोई अन्तर नहीं होता है। डोडरा कवार क्षेत्र (जनपद शिमला, हि०प्र०) में अर्जुन जाख तथा भीम की पूजा होती है³ और प्राचीन देव मंदिरों तथा कलाकृतियों के बारे में जनश्रुतियाँ हैं कि इनका निर्माण देव शिल्पी विश्वकर्मा ने कराया था। जबकि इतिहास एवं पुरातत्व की दृष्टि से ये कलाकृतियाँ उत्तर गुप्त अथवा राजपूत काल की हैं। किन्नौर तथा आसपास के क्षेत्रों के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के स्थलों के बारे में भी इस प्रकार की जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं जिन्हें महाभारत के सन्दर्भ से जोड़ा जाता है। अनुश्रुतियों और साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस क्षेत्र में महाभारत युगीन सभ्यता के अस्तित्व में होने के प्रमाण मिले हैं। अतः पश्चिमी गढ़वाल की कला एवं स्थापत्य विशिष्ट हैं जो पूर्णतया परिस्थिति तथा यहाँ के लोगों के परिस्थितिकी के आधार पर विकसित हुई है। इस अध्ययन का उद्देश्य भी यही रहेगा कि पश्चिमी गढ़वाल की इस विशिष्ट कला एवं स्थापत्य कला का सम्पूर्ण इतिहास सबके सम्मुख आ सके।

अवधारणा

कहा जाता है कि उत्तराखण्ड के पश्चिमी गढ़वाल के यमुना टोंस- उत्पत्यका की स्थापत्य कला में एक विशिष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इन कला कृतियों पर गढ़वाल की अपेक्षा हिमाचली प्रभाव है। इतिहास एवं

पुरातत्व की दृष्टि से ये कलाकृतियाँ उत्तर गुप्त अथवा राजपूत काल की हैं।

शोध विधि तथा महत्ता

आवश्यकता अविष्कार की जननी है और इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मनुष्यों ने प्रायः जीवन के सभी क्षेत्रों, घरेलू उत्पादों, कृषि, युद्ध, पशुचारण आदि से सम्बन्धित यंत्रों एवं लोक तकनीक एवं कला एवं स्थापत्य को जन्म दिया। पश्चिमी गढ़वाल की कला एवं स्थापत्य भी एक विशेष क्षेत्र की भौगोलिक ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित रही हैं। मनुष्य के सामाजिक विकास के साथ ही कला एवं स्थापत्य विकास प्रारम्भ हुआ। प्राचीन काल से यहाँ के लोगों ने जीवन यापन से सम्बन्धित अनेक तकनीकों का विकास किया। जिससे यहाँ की संस्कृति के बारे में हमें ज्ञान प्राप्त होता है। सम्पूर्ण लोक यंत्र तथा तकनीक हमारी धरोहर से यंत्र या लोक तकनीक पूर्ण रूप से विलुप्त न हो, जो इसी तथ्य को मध्य नजर रखते हुए इस शोध कार्य का महत्व बढ़ जाता है।

साहित्यावलोकन

इस अध्ययन के लिए हमने अब तक हुए कई अध्ययनों का अवलोकन किया यद्यपि यहाँ उन सभी का पूर्ण विवरण दे पाना संभव नहीं है फिर भी उनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है। अनुश्रुतियों और साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस क्षेत्र में महाभारत युगीन सभ्यता के अस्तित्व में होने के प्रमाण मिले हैं। प्रो० के०पी० नौटियाल के निर्देशन में हुए श्रीनगर के निकट तथा जनपद उत्तरकाशी में पुरोला के निकट के उत्खननों से देश के अन्य स्थलों, हस्तिनापुर, मथुरा, आदि के समान महाभारत के समान महाभारत युगीन सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। एस०पी० डबराल की रचना उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग दो में हमें पश्चिमी गढ़वाल तथा हिमाचल प्रदेश में देव मन्दिरों के समान ही आवासीय मकान भी काष्ठ काल का अनूठा दर्शन कराते हैं। इन आवासीय बहुमंजिले मकानों में भी पथर की अपेक्षा काष्ठ का अधिक उपयोग किया गया है। उत्तराखण्ड का इतिहास: एक नवीन मूल्यांकन, ऑनलाइन गाथा पब्लिकेशन, लखनऊ संस्करण-1, 2016 ई० में गढ़वाल की कला व स्थापत्य कला का अच्छा वर्णन है। इसी पुस्तक में पश्चिमी गढ़वाल अर्थात् टोंस यमुना उत्पत्यका में मंदिर शैलियों का वर्णन है जिनके निर्माण में पाषाण कम तथा लकड़ी का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। डॉ० यशवन्त सिंह के शोधों, 1981 ई० से हमें उत्तराखण्ड की स्थापत्य कला के समग्र अध्ययन करने में सहायता मिली। ओ०सी० हांडा की पुस्तक आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ उत्तराखण्ड में सम्पूर्ण राज्य की स्थापत्य कलाओं की जानकारी मिलती है जिससे हमें गढ़वाल की स्थापत्य कला को समझने में मदद मिली। अजय रावत की पुस्तक उत्तराखण्ड का समग्र राजनैतिक इतिहास 2016 ई० से भी हमें पश्चिमी गढ़वाल की कला एवं स्थापत्य के लोगों के परिस्थितिकी के आधार पर विकसित होने का अनुमान होता है। इसके अतिरिक्त एटकिन्सन के गजेटियर, शिव प्रसाद नैथानी इत्यादि की कृतियों एवं गढ़वाल विश्वविद्यालय के इतिहास और पुरातत्वविद् विभाग के कार्यों से हमें अपने षोध के संकलन करने में मदद मिली।

यमुना उत्पत्त्यका की स्थापत्य कला की विशेषताएं

पश्चिमी गढ़वाल अर्थात टोंस यमुना उत्पत्त्यका में उत्तराखण्ड के अन्य भागों से भिन्न दो अन्य मंदिर शैलियों में देखने को मिलती हैं। जिनके निर्माण में पाषाण कम तथा लकड़ी का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। जिन्हें शैली अथवा आकार के आधार पर पैगोड़ा (छत्रशैली) एवं किलेनुमा अथवा घण्टाघर नाम दिया गया है और इसे मंजिल आकार नाम भी दिया गया है।

छत्र शैली अथवा पैगोड़ा आकार के मन्दिर

हिमालय में इस शैली के मन्दिर नेपाल से लेकर हिमाचल प्रदेश तक प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। किन्तु उत्तराखण्ड में यमुना टोंस उत्पत्त्यका के अतिरिक्त इस शैली के मंदिर उपलब्ध नहीं हैं। क्योंकि हिमाचल प्रदेश के पूर्वी सीमा पर स्थित होने के कारण ही इस क्षेत्र में छत्रशैली के मन्दिरों का निर्माण स्वभाविक रूप से हुआ। हिमाचल प्रदेश में पारासर मन्दिर मण्डी, त्रिपुरा सुन्दरी नगर (कुल्लु), और त्रियुगीनारायण मंदिर (द्वार) और जुब्बल घाटी सहित टोंस की सहायक पावर उत्पत्त्यका के अनेक मन्दिर छत्र शैली में बने हैं।

टोंस उत्पत्त्यका के सुदूरवर्ती क्षेत्र में देवरा में कर्ण, नैटवाड़ में पोखू दोणी ने विटासीण, खन्ना में खन्नादेव तथा पंचगाई पट्टी में जखोल सहित सोमेश्वर (दुर्योधन) महाराज के समस्त 14 मंदिर और गडूगाड़ घाटी में विशान (विरखकेतु), सालरा में कंवलनाग तथा देवजानी में खण्डासूरी मंदिर और यमुना की सहायक कमल गंगा उत्पत्त्यका में गुन्दियाट गाँव में कपिलमुनि, पुजेली (खलाड़ी) में शिकारू नाग मन्दिर, पट्टी बनाल (तहसील बड़कोट) में गैर तथा पुजेली के रघुनाथ मंदिर, थान (पट्टी ठकराल) में जमदग्नि महाराज तथा सरनौल में रेणुका देवी और पाली (पट्टी बजरी) में सोमेश्वर (महाराज तथा जाख) और पट्टी गीठ में खरसाली का सोमेश्वर महाराज और वीफ में नारायण मंदिर छत्र अथवा पैगोड़ा शैली में बने हैं।

उपरोक्त मन्दिरों का निर्माण के सम्बन्ध में पुरातत्ववेत्ताओं का मत है कि इनका निर्माण पर्वतीय क्षेत्र की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ है। जिनमें बड़े आयताकार कक्षों के भित्ती पूर्वा में वर्गाकार गर्भगृह के बीच खुला प्रदक्षिणापथ है। आयताकार कक्ष के ऊपर के ओर निकले तीन गोल छत जो ऊपर की ओर क्रमशः छोटे होते चले जाते हैं, को स्थानीय बोली में 'भवरी' अथवा 'पुण्डुड़ी' कहा जाता है। 12 आयताकार कक्ष के चारों ओर खुला प्रदक्षिणापथ है। मंदिर की छत के नीचे चारों ओर लगे काष्ठ पट्टिकाओं पर लकड़ी के झालर लगे हैं। जो हवा चलने पर हिलते हैं और मंदिर की शोभा बढ़ाते हैं।

मंदिर की छत के बीचों-बीच लगे शहतीर (सिर-बाँस) के ऊपर पीछे के सिरे पर वाद्य तथा अग्र भाग में बकरी की काष्ठ निर्मित मूर्तियाँ लगायी जाती हैं। बकरी की इस प्रकार की मूर्तियाँ आवासीय मकानों के छतों में लगाने के रिवाज भी हैं। आज अथवा बकरी हिमालय की गौरवमयी 'खस' जाति की जातीय चिह्न था। जो इस क्षेत्र में खस जाति के बहुल्य को सिद्ध करता है और परम्परा में आज भी अपने जातीय चिह्न को

अपनाये हुए हैं। अध्ययन से सही निष्कर्ष निकलता है कि छत्र शैली के मन्दिरों का निर्माण यमुना टोंस उत्पत्त्यका क्षेत्र में मध्यकाल में हुआ। क्योंकि हिमाचल प्रदेश में मण्डी का पारासर मंदिर 1346 ई० और मनाली में हिडिम्बा देवी मन्दिर का निर्माण 1553 ई० में अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर निर्मित माने जाते हैं। इसी प्रकार टोंस उत्पत्त्यका में हनोल महासू मन्दिर यहाँ उपलब्ध पाषाण प्रतिभागों के आधार पर 11वीं-12वीं शताब्दी ई० में निर्मित माना जाता है। किन्तु समय-समय पर इसके वास्तुशिल्प में परिवर्तन होता रहा तथा उत्पत्त्यका में अन्य मन्दिर इसके पश्चात बने होंगे या समकालीन हैं।

इस आकारिकी अथवा शैली के मन्दिर 3 से 5 मंजिल तक ऊँचे होते हैं। जिन्हें कोट अथवा कोठी भी कहा जाता है। जिसका आशय किले से है। इसे घण्टाघर (जूमत जलचम) और मंजिल आकार भी कहा गया है। ये मन्दिर भू-तल से लेकर ऊपर की मंजिल तक चौकोर होते हैं। इनके निर्माण में पत्थर की अपेक्षा काष्ठ का अधिक उपयोग है। बहुमंजिले अथवा अधिक ऊँचाई के कारण इन्हें टावर अथवा मंजिल आकार नाम दिया गया है। इसकी सीढ़ियाँ लगायी जाती हैं। सबसे ऊपर की मंजिल के सामने बरामदो का प्राविधान तथा चारों ओर प्रदक्षिणा पथ भी होता है। जिसके चारों ओर छत के नीचे लगे शहतीरों पर सुन्दर नक्काशी देखने को मिलती है। सबसे ऊपर की मंजिल में देवगृह होता है। अन्य मंजिलों में भण्डारण तथा देवता के कारिन्दों तथा श्रद्धालुओं के आवास के लिए उपयोग किया जाता है। मन्दिर की छत लकड़ी के तख्तों तथा उसके ऊपर की लकड़ी की पठाल (स्लेटें) लगायी जाती हैं और छत पर्वतीय आवासीय मकानों के समान ढलवा है। पश्चिमी गढ़वाल तथा हिमाचल प्रदेश में इस प्रकार के मन्दिर में बड़ी संख्या में हैं। यद्यपि इस प्रकार के वास्तु निर्माण की परम्परा प्राचीन काल से रही है, किन्तु डॉ० तिवारी ने इस प्रकार के वास्तु का निर्माण गोरखा आक्रमण के पश्चात सुरक्षात्मक दृष्टि से होना बताया है।

यमुना-टोंस उत्पत्त्यका में दोणी, भितरी खन्यासणी, मसरी तथा पुजेली के सेड़कूड़े मन्दिर तथा देवलसारी, बजलाड़ी और तियां के लुदेश्वर महाराज मन्दिर, मोल्डा और पौण्टी में भद्रकाली मन्दिर, यमुनोत्तरी के निकट खरसाली का सोमेश्वर मन्दिर और पाली में जाख देवता मन्दिर किलेनुमा आकार में बने हैं। स्थानीय बुजुर्गों के अनुसार गोरखा आक्रमण से पूर्व ही (मध्यकाल) में इस प्रकार के वास्तु का निर्माण गढ़पति अथवा ठाकुरों द्वारा शुरू किया गया था। जब केन्द्रीय सत्ता के अभाव में स्थानीय गढ़पति/ठाकुर निरन्तर युद्धरत रहते थे। ऐसे समय में लोग सुरक्षा हेतु इन किलों अथवा मन्दिरों में शरण लेते थे। चारों ओर से बन्द होने के कारण शत्रुपक्ष इन किलों पर हमला नहीं कर सकते थे।

आवासीय वास्तु

देव मन्दिरों के समान यहाँ के आवासीय मकान की काष्ठ काल का अनूठा दर्शन कराते हैं। सामान्यतया मंजिल अथवा किलेनुमा आकार के मन्दिरों तथा बहु मंजिले मकानों को देखने में कोई अन्तर नहीं होता है।

इन आवासीय बहुमंजिले मकानों में भी पथर की अपेक्षा काष्ठ का अधिक उपयोग किया गया है।

उपरोक्त शैली के मकान 3-4 मंजिल से लेकर पाँच मंजिल तक ऊँचे होते हैं। पश्चिमी गढ़वाल तथा हिमाचल प्रदेश में इस प्रकार के मकानों के निर्माण की परम्परा रही है। पश्चिमी गढ़वाल के पट्टी फतेपर्वत, पंचगाई, सिंगतूर, बंगाण, बनाल-ठकराल, गीठ-बजरी, और रामासिराई तथा कमलसिराई में बहु मंजिलें आवासीय भवनों के निर्माण की परम्परा रही है और यहाँ के शिल्पियों को काष्ठ कला में विशेष महारत रही है। वर्तमान समय अपने भवनों की और अधिक सजावट तथा नक्काशी हेतु हिमाचल प्रदेश से कारीगरों को लेकर आते हैं। भवन के नीचे के पश्चात हर एक फीट के बाद लकड़ी के दो लम्बे शहतीर जोड़े जाते हैं और जिनके बीच में लगभग एक फीट की दूरी होती है। जिनके बीच-बीच में लकड़ी से बनी कुँजी (बटन) से जोड़ा जाता है। यह बटन बीच में आयताकार तथा दोनों ओर पंख होती हैं और दोनों स्लीपर्स के बीच की दूरी के खाली स्थान तक नीचे के शहतीरों तक सूखे पत्थरों से भरा जाता है। जो इसे मजबूती प्रदान करते हैं। कभी-कभी ढांचा पूर्ण बन जाने के बाद ही शहतीरों के बीच की खाली जगह में पत्थरों को भरा जाता है। मकान की छत को ढलवा बनाया जाता है। जिसे पहले लकड़ी के तख्तों तथा उसके ऊपर पत्थर की पटाल (स्लेट) लगायी जाती है। छत को दोनों ओर ढलवा बनाया जाता है। जिस पर पानी तथा बर्फ अधिक समय तक न टिक सके।

इस प्रकार के आवासीय मकानों में भू-तल के ऊपर के मंजिल तक पहुँचने के लिए अन्दर ही अन्दर मंजिल स मंजिल तक किलेनुमा मन्दिरों के समान सीढ़ियाँ लगी होती हैं। जिसे निषीण कहा जाता है। जिसे लकड़ी के चौकोर मोटे गेले पर खोदकर लगभग एक फीट की दूरी पर मिस्त्री द्वारा अन्दर खोदकर स्टेप बनाये जाते हैं। जिनके माध्यम से ऊपर की मंजिल तक पहुँचा जाता है। रात्रि में भूतल का दरवाजा बंद कर देने के पश्चात मकान में किसी भी प्रकार के शत्रु का चोरी का भय नहीं रहता है। मानव के आवास के साथ-साथ शीतकाल में पशु आवास हेतु भी इस प्रकार के मकानों का उपयोग किया जाता है। भूतल में गाय, भैंस तथा उसके ऊपर भेड़, बकरी और उसके ऊपर की मंजिल लोग घर गृहस्थी तथा कृषि कार्य में उपयोग होने वाले विभिन्न प्रकार के औजार, उपकरणों और सामान रखने के भारी बक्सों आदि के लिए उपयोग में लाया जाता है। चौथी मंजिल परिवार में आवास तथा पाँचवीं मंजिल में को वौण्ड कहा जाता है। जिसका उपयोग ईंधन लकड़ी के भण्डारण हेतु किया जाता है। कम संसाधन वाले लोगों के पास दो या तीन मंजिले मकान होते हैं और उसी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।¹⁸

मकान के सामने के खुले आंगन में अन्न भण्डारण हेतु कुठार निर्माण की परम्परा रही है। जो अधिकांशतः देवदारु की लकड़ी से निर्मित किये जाते हैं और पूर्णतया काष्ठ से बने होते हैं। यह आकार में दो मंजिला होता है और छत आवासीय मकानों के समान ही ढलवा बनी होती है। कुठार अथवा अन्न भण्डार हेतु

बुनियाद न खोदकर तल को पूर्णतया साफ किया जाता है और इसके लिए लम्बाई-चौड़ाई नापकर मिट्टी पत्थर की चिनाई करके चार कोनों में गुनिया बनाये जाते हैं। जिसकी ऊँचाई दो से ढाई फुट तक होती है, ताकि कुठार के नीचे पर्याप्त जगह रहे। जिसके नीचे से चारों ओर से हवा का पर्याप्त प्रवेश रहे तथा बिल्ली आदि भी आराम से आ जा सके। जो चूहों को इसके नीचे बिल बनाने से रोकती है। क्योंकि चूहे नीचे की ओर से लकड़ियों कुतरकर अनाज गांजे (खानों) में प्रवेश न कर सके।

चार कोनों पर बने गुनियों के ऊपर चारों तरफ से लकड़ी के स्लीपर (शहतीर) जोड़े जाते हैं और बीच में दो अन्य शहतीर एक दूसरे को क्रास कर बीच में जोड़े जाते हैं। इनके ऊपर खाँचे बनाकर लकड़ी का फर्श डाला जाता है। चारों ओर तथा बीच में क्रास स्लीपर्स के बीचों-बीच नालियाँ बनाकर उसके बीच में खड़े में तख्ते जोड़े जाते हैं। तख्तों को एक दूसरे से जोड़ने के लिए एक तख्ते के दोनों ओर नालियाँ खोंदी जाती हैं तथा दूसरे तख्ते के किनारों को पतला करके नालीदार तख्तों से जोड़ा जाता है और इस प्रकार चारों ओर तख्तों की दीवार जोड़ी जाती है जिसे कठवाड़ कहा जाता है तथा बीच के स्लीपर्स के ऊपर भी तख्तों को इसी प्रकार खड़े में जोड़कर अनाज रखने के गाजें (खाने) बनाये जाते हैं। भूतल के समान पुनरु स्लीपर्स में नालियाँ बनाकर बाहर तथा बीच की कठवाड़ के ऊपर रखे जाते हैं स्लीपर्स में नालियाँ बनाकर बाहर तथा बीच की कठवाड़ के ऊपर नाप लेकर तख्तों के ढक्कन बनाये जाते हैं। भूतल के सामने बीच में बने हुए खानों के ऊपर जोड़कर फर्श तैयार हो जाती है। कोठार तैयार होने पर ढक्कन खोलकर गांजों (खानों) से अनाज निकाला जाता है।

कठवाड़ तथा खानों के ऊपर लगे शहतीरों के ऊपर पुनः नालियाँ खोदकर भूतल की कठवाड़ (तख्तों की दीवार) खड़ी की जाती है और उसके ऊपर चारों ओर तथा बीच में स्लीपर जोड़े जाते हैं। जिसके बीच में भूतल के समान तख्तें बिछाकर फर्श तैयार की जाती है अब फर्श के बाहर तथा बीच में लगे स्लीपर्स पर लकड़ी के खम्भे खड़े किये जाते हैं। जिनके ऊपर वलियाँ जोड़कर ढलवा इसे छत का आकार दिया जाता है। बल्लियों के ऊपर तख्तों की छत बनायी जाती है तथा उसके ऊपर पत्थर की पटालों (स्लेट) लगायी जाती है आवासीय भवनों के समान इसकी छत भी ढलवा होती है।

पुराने समय में कूठार को चोर डकैतों से सुरक्षित रखने के लिय इसके दरवाजे पर लोहे का कुण्डे जोड़ा जाता था। जिसके बाहर लगभग 8" चौड़ी गाल चद्दर लगायी जाती थी। जिसे चन्द्राख कहा जाता है। लोहे के कुण्डे से लगभग 40.50 मी, लम्बी लोहे की संगल (जंजीर) जोड़ी जाती थी। जिस पर अलग दूरी पर चार पाँच घण्टियाँ लटकायी जाती थी। जिससे परिवार के आवास के मंजिल में दरवाजे के ऊपर तक पहुँचाया जाता था। रात्रि में कुठार में यदि कोई चोरी, खाद्यान्न या अन्य सामग्री चोरी करने का प्रयास करता तो संगल पर बँधी घण्टियों के बजने से चोरी का प्रयास असफल हो जाता था। जौनपुर और जौनसार बावर के आवासीय मकान उपरोक्त रवाई के आवासीय मकानों से कुछ भिन्न प्रकार

के होते हैं। यहां के मकान सामान्यतया दो मंजिले होते हैं। जिसमें काष्ठ का उपयोग अधिक से अधिक किया जाता है। भूतल की मंजिलें हेतु बुनियाद के ऊपर लगभग 8 फुट ऊंची चिनाई की जाती है। इस चिनाई के ऊपर चारों ओर लकड़ी के शहतीरों (स्लीपर) का जोड़ डाला जाता है। जिसे मेड़ाजोड़ कहा जाता है। इस जोड़ पर लगे स्लीपरों में नालियाँ बनायी जाती है। बीच में भी दो लम्बे शहतीर डाले जाते हैं। जिनके ऊपर मकान पूर्ण होने पर लकड़ी का फर्श बिछाया जाता है। जिसे मेड़ कहा जाता है।

मेड़ा जोड़ के ऊपर पत्थर की चिनाई न करके इस जोड़ के ऊपर लकड़ी पर बनाई गयी नालियों में खड़े में तख्तों की दीवार बनाई जाती है जिसे कठवाड़ कहा जाता है। ये तख्ते लगभग दो इंच मोटे होते हैं, जिनको आपस में जोड़ने हेतु एक तख्ते में दोनों ओर नालियाँ बनाई जाती हैं तथा दूसरे तख्ते के दोनों किनारे नुकीले (धारदार) बनाये जाते हैं। जिसे दोनों ओर लगे नालीदार तख्तों से जोड़ा जाता है इस प्रकार के क्रम में चारों ओर तख्तों को जोड़कर कठवाड़ (काष्ठ की दीवार) तैयार होने पर उसके ऊपर चारों ओर कूटार के कठवाड़ (काष्ठ दीवार) के समान शहतीर लगाये जाते हैं। इन शहतीरों के ऊपर की ओर भी नालियाँ बनायी जाती हैं जिनके ऊपर पुनः तख्तों की त्रिभुजाकार दीवार दोनों किनारों तथा बीच में खड़ी हो जाती है। जिनके ऊपर बांस और बल्लियों का ढलवा ढांचा बनाकर उसके ऊपर छत के तख्ते जोड़े जाते हैं और तख्तों के छत के ऊपर पत्थर के स्लेट से ढका जाता है जो पानी से इसकी सुरक्षा करते हैं और यह छत दीर्घकाल तक टिकाऊ रहती है।

इस प्रकार के मकानों के भू-तल का कमरा बहुत बड़ा होता है। जिसे ओबरा कहा जाता है तथा ऊपर की मंजिल जिसमें लकड़ी का फर्श होता है उसमें आगे की ओर कठवाड़ (काष्ठ की दीवार) डालकर शयन हेतु कमरा बनाया जाता है। जिसे 'आगला माचा' कहा जाता है। इसी प्रकार पीछे की ओर भी कठवाड़ डालकर प्रवेश द्वार के बगल में बाथरूम आदि बनाये जाते हैं। जिसे पाछला (पिछला) मराचा कहा जाता है। मुख्य कमरे का उपयोग रसोई तथा बैठक के रूप में किया जाता है। रोषनी हेतु किनारों के दीवार पर छोटी खिडकियाँ काटी जाती है। इनके लिए पल्लेदार ढक्कन बनाया जाता है। इस प्रकार की खिडकी को 'मोरी' अथवा 'गौखा' जाता है। सामान्यतया देखा गया है कि बड़े परिवारों के पास इस प्रकार के 2 या 3 मकान होते हैं। परिवार के आवास के अतिरिक्त अन्य मकानों का उपयोग अतिथ्य सत्कार तथा भण्डारण हेतु किया जाता है।

रवाई के समान जौनसार बावर और जौनपुर में कुठाल अथवा अन्य भण्डार खुले में बनाने की परम्परा नहीं है। यहाँ अन्न भण्डारण अथवा संग्रह हेतु मकानों के भू-तल में डोबड़ियाँ बनायी जाती हैं। जो कमरे के चारों ओर तख्तों के लगभग दीवार से 1 मी० आगे लकड़ी की कठवाड़ (काष्ठ दीवार) बनाकर की जाती है। दीवार तथा कठवाड़ के मध्य की दूरी को खानों में बाँटकर उसके ऊपर लकड़ी के बुड़के (ढक्कन लगाकर) अलग खानों में

अलग अलग प्रकार के अनाजों का संग्रह किया जाता है। भू-तल ठण्डा होने के कारण अनाज खराब नहीं होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण पश्चिमी गढ़वाल में मकानों को 'कुडू' अथवा 'कुडी' कहा जाता है। बड़े मकानों को हवेली भी कहा जाता है। यदि किसी के पास तीन मकान हैं तो उन्हें 'उपला कुडू', 'विचला कुडू' और 'निचला कुडू' (नीचे का मकान) अलग अलग संबोधित किया जाता है। मकानों के मध्य आगे की ओर किनारे पर या बीचों बीच खुला आँगन होता है। जिसका उपयोग सामान्यतया बैठने कपड़े सुखाने तथा फसल के मौसम में दाँई निकालने तथा अनाजों को सुखाने के लिये किया जाता है। रवाई में घर के आँगन को ही खलियान के रूप में उपयोग किया जाता है किन्तु रवाई के गौर खाटल जौनपुर तथा जौनसार-बावर में गाँव से कुछ दूरी पर एक स्थान पर सारे गाँव के खलिहान होते हैं और खलिहान के निकट एक छोटी सी झोपड़ी बनायी जाती है। फसल निकालने के समय इसको सुखाते या निकालते समय यदि अचानक बारिश होती है तो फसलों को खलकूड़ी (हट) में बटोर दिया जाता है। खलिहान वाली जगह खुले में तथा जहाँ सुबह से शाम तक पर्याप्त धूप रहती है ऐसे स्थानों के चयन का विशेष ध्यान रखा जाता है। फसलों को खुब सूख जाने पर उनको बैलों के नीचे या डाड़ों से कूटकर निकाला जाता है तथा दाने को सुखाने हेतु घर के आँगन में लाया जाता है और इसके बाद घर में बनी डोबड़ियों अन्य भण्डारों में भर लिया जाता है तथा आवश्यकता अनुसार परिवार के लिये राशन निकाला जाता है।

रवाई के गोडर खाटल जौनपुर और जौनसार बावर में पशुओं को मंदिर के भू-तल में न बाँधकर घर से दूर विभिन्न सेरों में एक से अधिक पशुशालायें बनाने का रिवाज है। जिसे 'पाण्ड' कहा जाता है। पाण्ड दो मंजिली बनी होती है। इसके भू-तल में पशुओं (गाय, भैंस) बाँधा जाता है तथा ऊपर की मंजिल में मर्द (पशुओं की देख रेख करने वाला) व्यक्ति परिवार सहित निवास करता है। कुछ समय एक सेरे वाले पाण्ड में यहाँ के खेतों के लिये पर्याप्त गोबर संग्रहित हो जाने के बाद पशुओं को दुसरे पाण्ड अथवा पशु शाला में स्थानान्तरित किया जाता है। फसल निकालने के मौसम में पाण्डों का उपयोग भी स्थाई तौर पर अनाजों के संग्रह हेतु किया जाता है। बाद में अनाजों को घर में पहुँचा दिया जाता है। पाण्ड के आसपास भी ऊपर लिखित खलकूड़ी अथवा खलिहान बनाने का रिवाज होता है। रवाई के मध्यवर्ती भागों में एक मंजिली छान बनाने का रिवाज रहा है। जहाँ बरसात तथा शीतकाल में पशुओं को रखा जाता है। पशुओं की देख-रेख घर से या एक व्यक्ति स्थायी रूप से ही पशुशाला में रहता है और यहीं पर पर्याप्त गोबर संग्रहित कर शीत तथा ग्रीष्म काल में गोबर को खेतों में पहुँचाया जाता है।

अतः पश्चिमी गढ़वाल की कला एवं स्थापत्य अपने आप में विषिष्ट हैं जो पूर्णतया परिस्थिति तथा यहाँ के लोगों के परिस्थितिकी के आधार पर विकसित हुई है

और आगे भी शोधार्थियों, पुरातत्वविदों एवं मानव वैज्ञानिकों के अध्ययन हेतु रुचि का विषय रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कठोच यशवन्त सिंह, मध्य हिमालय का पुरातत्व, शोध प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, 1981
2. रावत प्रहलाद सिंह, महाभारत काल की रंग स्थली टोंस उत्पत्तिका की स्थापत्य कला लेख संग्रह, कामगार हित प्रका0, 1990
3. गुसाईं एम0एस0 एवं अनुराधा गंसाईं— उत्तराखण्ड का इतिहास: एक नवीन मुल्यांकन, संस्करण-1 2016ई0
4. सिंह, राना, जौनसार भाबर दर्शन, 2004
5. रावत, प्रहलाद सिंह, गढ़वाल हिमालय के भेड़ पालक एवं उनकी अर्थव्यवस्था, उत्तराखण्ड अंक-6, 1992
6. ध्यानी ध्यान सिंह, ध्यानी 2016, रवांल्टी लोकोक्ति 'अखाण कोश', समय साक्ष्य, देहरादून, 2016ई0

7. बाजपेयी एस0सी0, किन्नौर, ए रिमोट लैण्ड इन द हिमालया, इण्डस पब्लिकेशन दिल्ली, 1991ई0
8. कठोच यशवन्त सिंह, उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास, देहरादून, विन्सर, प्रका0, संस्करण.2, 2010ई0
9. चौहान रणवीर सिंह, गढ़वाल के गढ़ों का इतिहास, कोटद्वार, कालेश्वर प्रेस, 2000ई0
10. नौटियाल के.पी खण्डूडी बी0एम0, लेख उत्तराखण्ड पुरातत्व, नई दृष्टि नई दिषायें, 2003,
11. मियां गोवर्धन सिंह, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ हिमाचल प्रदेश, षिमला, बी0आर0 प्रकाषक, 2012ई0
12. डबराल एस.पी, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग दो, दोगड़डा उत्तराखण्ड, 1969ई0
13. पेनलप चेडवुड, कुल्लु द एण्ड ऑफ द हैबिटेबल वर्ल्ड, टाईम्स ग्रुप प्रकाशन, 1972ई0